अध्याय
पंद्रह

संविधान का निर्माण
एक नए युग की शुरुआत

भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 को अस्तित्व में आया और यह दुनिया का सबसे लंबा संविधान है। यदि हम अपने देश के आकार और विविधता पर ध्यान दें तो इसकी लंबाई व पेचीदगी को आसानी से समझ सकते हैं। स्वतंत्रता के समय भारत न केवल एक विशाल और विविधतापूर्ण बल्कि गहरे तौर पर बिखरा हुआ देश भी था। ऐसे में देश की एकजुटता और प्रगति के लिए एक विस्तृत, गहन विचार-विमर्श पर आधारित और सावधानीपूर्वक सूत्रबद्ध किया गया संविधान लाज़िमी था। हमारे संविधान ने अतीत और वर्तमान के घावों पर मरहम लगाने और विभिन्न वर्गों, जातियों व समुदायों में बँटे भारतीयों को एक साझा राजनीतिक प्रयोग में शामिल करने में मदद दी है। दूसरी ओर, इस संविधान ने लंबे समय से चली आ रही ऊँच-नीच और अधीनता की संस्कृति में लोकतांत्रिक संस्थानों को विकसित करने का भी प्रयास किया है।

भारत के संविधान को दिसंबर 1946 से दिसंबर 1949 के बीच सूत्रबद्ध किया गया। इस दौरान संविधान सभा में इसके मसविदे के एक-एक भाग पर लंबी चर्चाएँ चलीं। संविधान सभा

चित्र 15.1
दिसंबर 1949 में तीन साल तक चली बहस के बाद संविधान पर हस्ताक्षर किए गए।

के कुल 11 सत्र हुए जिनमें 165 दिन बैठकों में गए। सत्रों के बीच विभिन्न समितियाँ और उपसमितियाँ मसविदे को सुधारने और सँवारने का काम करती थीं।

राजनीति शास्त्र की पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके होंगे कि भारत का संविधान कैसा है। आप देख चुके हैं कि आज़ादी के बाद इस संविधान की क्या उपयोगिता और सार्थकता रही है। इस अध्याय में हम संविधान के इतिहास और उसके निर्माण के दौरान हुई गहन परिचर्चा को जानेंगे। यदि संविधान सभा में उठने वाली आवाज़ों को सुनने का प्रयास करें तो हमें उन प्रक्रियाओं का अंदाज़ा लग जाएगा जिनके माध्यम से संविधान को सूत्रबद्ध किया गया और एक नए राष्ट्र की कल्पना साकार हुई।

1. उथल-पुथल का दौर

चित्र 15.2
विनाश और उथल-पुथल की छवियाँ संविधान सभा के सदस्यों को लंबे समय तक परेशान करती रहीं।

संविधान निर्माण से पहले के साल काफी उथल-पुथल वाले थे। यह महान आशाओं का क्षण भी था और भीषण मोहभंग का भी। 15 अगस्त 1947 को भारत आज़ाद तो कर दिया गया किंतु इसके साथ ही इसे विभाजित भी कर दिया गया। लोगों की स्मृति में 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन अभी भी जीवित था जो ब्रिटिश राज के खिलाफ संभवत: सबसे व्यापक जनांदोलन था। विदेशी सहायता से सशस्त्र संघर्ष के जरिए स्वतंत्रता पाने के लिए सुभाष चंद्र बोस द्वारा किए गए प्रयास भी लोगों को बखूबी याद थे। 1946 के वसंत में बम्बई तथा अन्य शहरों में रॉयल इंडियन नेवी (शाही भारतीय नौसेना) के सिपाहियों का विद्रोह भी लोगों को बार-बार आंदोलित कर रहा था। लोगों की सहानुभूति सिपाहियों के साथ थी। चालीस के दशक के आखिरी सालों में देश के विभिन्न भागों में मजदूरों और किसानों के आंदोलन भी हो रहे थे।

व्यापक हिंदू-मुस्लिम एकता इन जनांदोलनों का एक अहम पहलू था। इसके विपरीत कांग्रेस और मुस्लिम लीग, दोनों प्रमुख राजनीतिक दल धार्मिक सौहार्द्र और सामाजिक सामंजस्य स्थापित करने के लिए सुलह-सफाई की कोशिशों में नाकामयाब होते जा रहे थे। अगस्त 1946 में कलकत्ता में शुरू हुई हिंसा के साथ उत्तरी और पूर्वी भारत में लगभग साल भर तक चलने वाला दंगे-फसाद और हत्याओं का लंबा सिलसिला शुरू हो गया था (अध्याय 13 और 14 देखिए)। बर्बर हिंसा का यह वीभत्स नाच भीषण जनसंहारों के साथ हुआ। इसके साथ ही देश-विभाजन की घोषणा हुई और असंख्य लोग एक जगह से दूसरी जगह जाने लगे।

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता दिवस पर आनंद और उम्मीद का जो माहौल था वह उस समय के लोगों को कभी नहीं भूलेगा। लेकिन भारत के बहुत सारे मुसलमानों और पाकिस्तान में रहने वाले हिंदुओं व सिखों

चित्र 15.3
14 अगस्त 1947 की मध्यरात्रि को संविधान सभा में बोलते जवाहरलाल नेहरू
इसी समय नेहरू ने अपना वह प्रसिद्ध भाषण दिया था जिसकी शुरुआती पंक्तियाँ इस प्रकार थीं : "बहुत समय पहले हमने नियति से साक्षात्कार किया था और अब समय आ चुका है कि हम अपने उस संकल्प को न केवल पूर्ण रूप से या समग्रता में, बल्कि उल्लेखनीय रूप से साकार करें। अर्धरात्रि के इस क्षण में जब दुनिया सो रही है, भारत जीवन और स्वतंत्रता की ओर जाग रहा है।"

के लिए यह एक निर्मम चुनाव का क्षण था – उनके सामने यह तत्क्षण मृत्यु तथा पीढ़ियों पुरानी जड़ों से उखड़ जाने के बीच चुनाव का क्षण था। करोड़ों शरणार्थी यहाँ से वहाँ जा रहे थे। मुसलमान पूर्वी व पश्चिमी पाकिस्तान की तरफ तो हिंदू और सिख पश्चिमी बंगाल व पूर्वी पंजाब की तरफ बढ़े जा रहे थे। उनमें से बहुत सारे कभी मंज़िल तक नहीं पहुँचे, बीच रास्ते में ही मर गए।

नवजात राष्ट्र के सामने इतनी ही गंभीर एक और समस्या देशी रियासतों को लेकर थी। ब्रिटिश राज के दौरान उपमहाद्वीप का लगभग एक-तिहाई भू-भाग ऐसे नवाबों और रजवाड़ों के नियंत्रण में था जो ब्रिटिश ताज की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। उनके पास अपने राज्यों को जैसे चाहे चलाने की सीमित ही सही लेकिन काफी आज़ादी थी। जब अंग्रेज़ों ने भारत छोड़ा तो इन नवाबों और राजाओं की संवैधानिक स्थिति बहुत अजीब हो गई। एक समकालीन प्रेक्षक ने कहा था कि कुछ महाराजा तो "बहुत सारे टुकड़ों में बँटे भारत में स्वतंत्र सत्ता का सपना देख रहे थे।"

संविधान सभा की बैठकें इसी पृष्ठभूमि में संपन्न हो रही थीं। बाहर जो कुछ चल रहा था उससे संविधान सभा में होने वाली बहस और विचार-विमर्श भी भला अछूता कैसे रह सकता था?

1.1 संविधान सभा का गठन

संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव 1946 के प्रांतीय चुनावों के आधार पर किया गया था। संविधान सभा में ब्रिटिश भारतीय प्रांतों द्वारा भेजे गए सदस्यों के अलावा रियासतों के प्रतिनिधि भी शामिल थे। उन्हें इसलिए शामिल किया गया था क्योंकि ये राज्य भी एक-एक करके भारतीय संघ में शामिल हो चुके थे। मुस्लिम लीग ने शुरुआती बैठकों (यानी 15 अगस्त 1947 से पहले) का बहिष्कार किया जिसके कारण उस दौर में

संविधान सभा एक ही पार्टी का समूह बनकर रह गई थी। सभा के 82 प्रतिशत सदस्य कांग्रेस के भी सदस्य थे।

लेकिन कांग्रेस अपने आप में बहुत व्यापक मोर्चा थी इसलिए इन सदस्यों के विचार भी काफी भिन्न थे। उनमें से कुछ निरीश्वरवादी और धर्मनिरपेक्ष थे; (एक एंग्लो-इंडियन सदस्य फ्रेंक एंथनी के शब्दों में) कुछ "तकनीकी रूप से कांग्रेस के परंतु आध्यात्मिक स्तर पर आर.एस.एस. और हिंदू महासभा के सदस्य" थे। आर्थिक विचारों के मामले में कुछ समाजवादी थे तो कुछ सदस्य ज़मींदारों के समर्थक थे। आंतरिक विविधता के अलावा कांग्रेस ने विभिन्न जातियों और धर्मों का प्रतिनिधित्व करने के लिए कुछ स्वतंत्र सदस्यों तथा महिलाओं को भी नामांकित किया था। विधि विशेषज्ञों को संविधान सभा में लाने पर पार्टी ने विशेष ध्यान दिया। संविधान सभा में हुई गंभीर बहसों से सदस्यों के दृष्टिकोणों में विविधता साफ दिखाई देती है।

संविधान सभा में हुई चर्चाएँ जनमत से भी प्रभावित होती थीं। जब संविधान सभा में बहस होती थी तो विभिन्न पक्षों की दलीलें अखबारों में भी छपती थीं और तमाम प्रस्तावों पर सार्वजनिक रूप से बहस चलती थी। इस तरह, प्रेस में होने वाली इस आलोचना और जवाबी आलोचना से किसी मुद्दे पर बनने वाली सहमति या असहमति पर गहरा असर पड़ता था। सामूहिक सहभागिता का भाव पैदा करने के लिए जनता के सुझाव भी आमंत्रित किए जाते थे। इस प्रसंग में सभा को सैकड़ों सुझाव मिले जिनके कुछ नमूनों को देखने पर ही पता चल जाता है कि हमारे विधि निर्माताओं को कितने परस्पर विरोधी हितों पर विचार करना था। ऑल इंडिया वर्णाश्रम स्वराज्य संघ (कलकत्ता) ने आग्रह किया कि हमारा संविधान "प्राचीन हिंदू कृतियों में उल्लिखित सिद्धातों पर आधारित होना चाहिए।" गौ-हत्या पर पाबंदी और बूचड़खानों को बंद करने की विशेष रूप से माँग की गई थी। कथित निचली जातियों के समूहों ने माँग की कि "सवर्णों द्वारा दुर्व्यवहार"

चित्र 15.4
संविधान सभा का अधिवेशन।
सरदार वल्लभ भाई पटेल दाएँ से दूसरे स्थान पर बैठे हैं।

पर रोक लगाई जाए और "विधायिका, सरकारी महकमों और स्थानीय निकायों आदि में जनसंख्या के आधार पर सीटों के आरक्षण की व्यवस्था" की जाए। भाषायी अल्पसंख्यक चाहते थे कि "मातृभाषा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता" मिले तथा "भाषायी आधार पर प्रांतों का पुनर्गठन" किया जाए। धार्मिक अल्पसंख्यकों ने विशेष सुरक्षाओं का आग्रह किया। विज़यानगरम के जिला शिक्षा संघ तथा बम्बई के सेंट्रल ज्यूइश बोर्ड जैसे बहुत सारे संगठनों ने आग्रह किया कि "विधायिका इत्यादि सहित सभी सार्वजनिक संस्थानों" में उनके लोगों को "पर्याप्त प्रतिनिधित्व" मिलना चाहिए।

1.2 मुख्य आवाज़ें

संविधान सभा में कुल तीन सौ सदस्य थे। इनमें से छह सदस्यों की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण दिखाई देती है। इन छह में से तीन – जवाहर लाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और राजेंद्र प्रसाद – कांग्रेस के सदस्य थे। "ऐतिहासिक उद्देश्य" प्रस्ताव नेहरू ने पेश किया था। यह प्रस्ताव भी उन्होंने ही पेश किया था कि भारत का राष्ट्रीय ध्वज "केसरिया, सफेद और गहरे हरे रंग की तीन बराबर चौड़ाई वाली पट्टियों का तिरंगा" झंडा होगा जिसके बीच में नीले रंग का चक्र होगा। पटेल मुख्य रूप से परदे के पीछे कई महत्त्वपूर्ण काम कर रहे थे। उन्होंने कई रिपोर्टों के प्रारूप लिखे, कई परस्पर विरोधी विचारों के बीच सहमति पैदा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। राजेंद्र प्रसाद संविधान सभा के अध्यक्ष थे। उन्हें न केवल चर्चा को रचनात्मक दिशा में ले जाना था बल्कि इस बात का खयाल भी रखना था कि सभी सदस्यों को अपनी बात कहने का मौका मिले।

कांग्रेस के इस त्रिगुट के अलावा प्रख्यात विधिवेत्ता और अर्थशास्त्री बी.आर. अम्बेडकर भी सभा के सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्यों में से एक थे। यद्यपि ब्रिटिश शासन के दौरान अम्बेडकर कांग्रेस के राजनीतिक विरोधी रहे थे परंतु स्वतंत्रता के समय महात्मा गाँधी की सलाह पर उन्हें केंद्रीय विधि मंत्री का पद सँभालने का न्यौता दिया गया था। इस भूमिका में उन्होंने संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में काम किया। उनके साथ दो और वकील काम कर रहे थे। एक गुजरात के के.एम. मुंशी थे और दूसरे मद्रास के अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर थे। दोनों ने ही संविधान के प्रारूप पर महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए।

इन छह सदस्यों को दो प्रशासनिक अधिकारी भी महत्त्वपूर्ण सहायता दे रहे थे। इनमें से एक बी.एन. राव थे। वह भारत सरकार के संवैधानिक सलाहकार थे और उन्होंने अन्य देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का गहन अध्ययन करके कई चर्चा पत्र तैयार किए थे। दूसरे अधिकारी एस.एन. मुखर्जी थे। मुख्य योजनाकार मुखर्जी के बारे में अम्बेडकर ने कहा था कि "बेहद जटिल प्रस्तावों को भी सरलतम और स्पष्टतम कानूनी रूप में प्रस्तुत करने की उनकी क्षमता का विरले ही कोई मुकाबला कर पाएगा।"

अम्बेडकर के पास सभा में संविधान के प्रारूप को पारित करवाने की ज़िम्मेदारी थी। इस काम में कुल मिलाकर 3 वर्ष लगे और इस दौरान हुई चर्चाओं के मुद्रित रिकॉर्ड 11 भारी-भरकम खंडों में प्रकाशित हुए। यह लंबी मगर दिलचस्प प्रक्रिया थी। संविधान सभा के सदस्यों ने अपने विविध दृष्टिकोण बड़ी सफाई से पेश किए थे। उनकी प्रस्तुतियों में हम भारत के भावी स्वरूप, भारतीय भाषाओं, राष्ट्र के लिए आदर्श राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था, नागरिकों के नैतिक मूल्य आदि के बारे में परस्पर विरोधी विचार देख सकते हैं।

चर्चा कीजिए...

अध्याय 13 और 14 को एक बार फिर देखिए। अब चर्चा कीजिए कि उस समय के राजनीतिक हालात से संविधान सभा में चले बहस-मुबाहिसे पर किस तरह असर पड़ा।

चित्र 15.5
बी.आर. अम्बेडकर हिंदू कोड बिल पर चर्चा का संचालन कर रहे हैं।

2. संविधान की दृष्टि

13 दिसंबर 1946 को जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा के सामने ''उद्देश्य प्रस्ताव'' पेश किया। यह एक ऐतिहासिक प्रस्ताव था जिसमें स्वतंत्र भारत के संविधान के मूल आदर्शों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी और वह फ़्रेमवर्क सुझाया गया था जिसके तहत संविधान का कार्य आगे बढ़ना था। इसमें भारत को एक "स्वतंत्र सम्प्रभु गणराज्य" घोषित किया गया था, नागरिकों को न्याय, समानता व स्वतंत्रता का आश्वासन दिया गया था, और यह वचन दिया गया था कि "अल्पसंख्यकों, पिछड़े व जनजातीय क्षेत्रों एवं दमित व अन्य पिछड़े वर्गों के लिए पर्याप्त रक्षात्मक प्रावधान किए जाएँगे...।" इन उद्देश्यों को रेखांकित करते हुए नेहरू ने भारतीय प्रयोग को एक व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत किया। इस अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि उनकी नज़र बरबस अतीत में हुए उन ऐतिहासिक प्रयोगों की ओर जा रही है जिनमें अधिकारों के ऐसे दस्तावेज़ तैयार किए गए थे।

स्रोत 1

"हम सिर्फ नकल करने वाले नहीं हैं"

13 दिसंबर 1946 को अपने प्रसिद्ध भाषण में जवाहरलाल नेहरू ने यह कहा था :

मेरे ज़हन में बार-बार वे सारी संविधान सभाएँ आ रही हैं जो पहले यह काम कर चुकी हैं। मुझे उस महान अमेरिकी राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया का खयाल आ रहा है जहाँ राष्ट्र-निर्माताओं ने एक ऐसा संविधान रच दिया जो इतने सारे सालों, डेढ़ सदी से भी ज़्यादा समय तक काल की कसौटी पर खरा उतरा है। उन्होंने एक महान राष्ट्र गढ़ा जो उसी संविधान पर आधारित है। इसके साथ ही मेरी नज़र उस महान क्रांति की ओर जाती है जो 150 साल पहले एक अन्य स्थान पर हुई थी। मुझे उस संविधान सभा का विचार आता है जो स्वतंत्रता के लिए इतने सारे संघर्ष लड़ने वाले पेरिस के भव्य एवं खूबसूरत शहर में जुटी थी। उस संविधान सभा ने कितनी मुश्किलों का सामना किया था और किस तरह राजा व तमाम अन्य अधिकारी उसके रास्ते में रोड़ा बन रहे थे। इतिहास के ये सारे अध्याय बरबस मुझे याद आ रहे हैं। सदन इस बात को याद रखेगा कि जब इस तरह की मुश्किलें आईं और जब उन संविधान सभाओं के लिए एक कमरा तक नहीं दिया जा रहा था तो उन्होंने टेनिस के खुले मैदान में सभा की थी और एक शपथ ली थी जिसे 'टेनिस कोर्ट की शपथ' के नाम से जाना जाता है। उन्होंने राजाओं व अन्य ताकतों की रुकावटों के बावजूद अपनी बैठकें जारी रखीं और तब तक वहाँ से नहीं हिले जब तक उन्होंने अपना काम पूरा नहीं कर लिया था। मुझे विश्वास है कि हम भी उसी शुद्ध भावना से यहाँ इकट्ठा हुए हैं और चाहे हमारी बैठक इस कक्ष में हो या कहीं और, चाहे खेतों में हो या बाज़ार में, हमारी बैठकें तब तक जारी रहेंगी जब तक हम अपना काम पूरा नहीं कर लेंगे।

जारी...

स्रोत 1 जारी...

इसके साथ ही मुझे हाल की एक क्रांति का विचार आता है जिसमें एक नए किस्म के राज्य का जन्म हुआ। यह रूस की क्रांति थी जिसने दुनिया के एक शक्तिशाली देश के रूप में सोवियत समाजवादी गणराज्य को जन्म दिया। आज यह देश दुनिया में अप्रतिम भूमिका निभा रहा है। यह न केवल दुनिया का ताकतवर देश है बल्कि हमारा पड़ोसी भी है।

ये सारे महान प्रयोग हमारे सामने हैं। हमें उनकी सफलताओं से सीखना है और उनकी विफलताओं से बचने का प्रयास करना है। हो सकता है हम उन्ही विफलताओं से बचने में सफल न हो पाएँ क्योंकि किसी भी इनसानी कोशिश में थोड़ी-बहुत नाकामी की गुंजाइश तो रहती ही है। परंतु, मुझे विश्वास है कि तमाम रुकावटों और कठिनाइयों के बावजूद हम आगे बढ़ेंगे और उस सपने को प्राप्त व साकार करके ही दम लेंगे जिसे हम इतने अरसे से अपने दिलों में संजोए हुए हैं...।

हमने एक स्वतंत्र संप्रभु गणराज्य की स्थापना का दृढ़ और पवित्र संकल्प लिया है। भारत का संप्रभु होना नियत है। इसका स्वतंत्र होना और गणराज्य होना भी स्वाभाविक है...। कुछ मित्रों ने सवाल उठाया है : "आपने यहाँ 'लोकतांत्रिक' शब्द क्यों नहीं रखा।" मैंने उन्हें कहा है कि निस्संदेह यह सोचा जा सकता है कि कोई गणराज्य लोकतांत्रिक न हो परंतु हमारा पूरा इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि हम लोकतांत्रिक संस्थानों के ही पक्षधर हैं। स्वाभाविक है कि हमारा लक्ष्य लोकतंत्र है। लोकतंत्र से कम कुछ भी नहीं। यह लोकतंत्र कैसा होगा, उसकी शक्ल-सूरत कैसी होगी, यह एक अलग मसला है? आज के लोकतंत्रों ने दुनिया की प्रगति में जबरदस्त भूमिका निभायी है और उनमें से बहुत सारे यूरोप तथा अन्य स्थानों के देश हैं। परंतु यह संदेहजनक हो सकता है कि अगर उन्हें पूरी तरह लोकतांत्रिक बने रहना है तो न जाने कब उन लोकतंत्रों को अपनी शक्ल-सूरत थोड़ी बहुत बदलनी पड़ती। मैं आशा करता हूँ कि किसी कथित लोकतांत्रिक देश की एक खास लोकतांत्रिक प्रणाली या किसी संस्थान विशेष की हम सिर्फ नकल करने वाले नहीं हैं। हो सकता है कि हम उससे बेहतर कुछ रच दें। बहरहाल, किसी भी सूरत में, हम यहाँ जैसी चाहे सरकार बनाएँ, वह हमारे लोगों के स्वभाव के अनुरूप और उनको स्वीकार्य ज़रूर होनी चाहिए। हम लोकतंत्र के हक में हैं। यह इस सदन को तय करना है कि इस लोकतंत्र, पूर्णतम लोकतंत्र का स्वरूप कैसा होगा। सदन इस बात को देख सकता है यद्यपि इस प्रस्ताव में हमने "लोकतांत्रिक" शब्द का इस्तेमाल नहीं किया है क्योंकि हमें लगा कि यह तो स्वाभाविक ही है कि "गणराज्य" शब्द में यह शब्द पहले ही निहित होता है। इसलिए हम अनावश्यक और अनुपयोगी शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहते थे। हमने शब्दों के उपयोग मात्र से कहीं ज़्यादा ध्यान दिया है। हमने इस प्रस्ताव में लोकतंत्र की अंतर्वस्तु प्रस्तुत की है। बल्कि लोकतंत्र की ही नहीं, आर्थिक लोकतंत्र की अंतर्वस्तु प्रस्तुत की है। अन्य सदस्यों को इस बात पर आपत्ति हो सकती है कि इस प्रस्ताव में हमने भारत को एक समाजवादी राज्य बनाने का उल्लेख क्यों नहीं किया है। यहाँ मेरा केवल इतना ही कहना है कि मैं समाजवाद का समर्थक हूँ और मुझे आशा है कि एक दिन भारत भी समाजवाद के पक्ष में होगा और वही भारत एक समाजवादी राज्य की स्थापना के मार्ग पर चलेगा और मुझे पूरा विश्वास है कि एक दिन पूरी दुनिया को इसी मार्ग पर चलना होगा।

संविधान सभा बहस, खंड 1

टेनिस कोर्ट की शपथ

➲ उद्देश्य प्रस्ताव में "लोकतांत्रिक" शब्द का इस्तेमाल न करने के लिए जवाहरलाल नेहरू ने क्या कारण बताया था?

नेहरू के भाषण (स्रोत 1) की सावधानी से पड़ताल की जानी चाहिए। उसमें क्या कहा जा रहा है? नेहरू के अतीत-प्रेम से क्या पता चलता है? संविधान की दृष्टि को निर्धारित करने वाले विचारों के उदगम के बारे में वह क्या कह रहे हैं? अतीत की ओर जाते हुए अमेरिकी और फ़्रांसीसी क्रांति का हवाला देते हुए नेहरू भारत में संविधान निर्माण के इतिहास को मुक्ति व स्वतंत्रता के एक लंबे ऐतिहासिक संघर्ष का हिस्सा सिद्ध कर रहे हैं। वह भारतीय संघर्ष के ऐतिहासिक महत्त्व को अतीत के क्रांतिकारिक क्षणों के समकक्ष बता रहे हैं। लेकिन नेहरू के कहने का आशय यह नहीं है कि उन घटनाओं को आज के लिए ब्लूप्रिंट मान लिया जाए; या कि उन क्रांतियों के विचारों को बिना सोचे-विचारे भारत पर लागू किया जा सकता है। वह किसी खास तरह के लोकतंत्र को अपनाने का विरोध करते हैं और कहते हैं कि हमारे लोकतंत्र की रूपरेखा हमारे बीच होने वाली चर्चा से ही उभरेगी। वे इस बात पर जोर देते हैं कि भारत में संविधान के आदर्श और प्रावधान कहीं और से उठाए गए नहीं हो सकते। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि 'हम सिर्फ नकल करने वाले नहीं हैं'। उनके शब्दों में, भारत में शासन की जो व्यवस्था स्थापित हो वह 'हमारे लोगों के स्वभाव के अनुरूप और उनको स्वीकार्य होनी चाहिए।' पश्चिम से, वहाँ की उपलब्धियों और विफलताओं से सबक लेना ज़रूरी तो है लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि पश्चिमी समाजों को भी अन्य स्थानों पर हुए प्रयोगों से बहुत कुछ सीखना पड़ा था और लोकतंत्र की अपनी अवधारणा बदलनी पड़ी थी। भारतीय संविधान का उद्देश्य यह होगा कि लोकतंत्र के उदारवादी विचारों और आर्थिक न्याय के समाजवादी विचारों का एक-दूसरे में समावेश किया जाए और भारतीय संदर्भ में इन विचारों की रचनात्मक व्याख्या की जाए। नेहरू इस बात पर जोर दे रहे थे कि भारत के लिए क्या उचित है – इस बारे में हमें रचनात्मक ढंग से सोचना चाहिए।

2.1 लोगों की इच्छा

संविधान सभा के कम्युनिस्ट सदस्य सोमनाथ लाहिड़ी को संविधान सभा की चर्चाओं पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का स्याह साया दिखाई देता था। उन्होंने सदस्यों तथा आम भारतीयों से आग्रह किया कि वे साम्राज्यवादी शासन के प्रभाव से खुद को पूरी तरह आज़ाद करें। 1946-47 के जाड़ों में जब संविधान सभा में चर्चा चल रही थी तो अंग्रेज़ अभी भी भारत में ही थे। जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार शासन तो चला रही थी परंतु उसे सारा काम वायसराय तथा लंदन में बैठी ब्रिटिश सरकार की देखरेख में करना पड़ता था। लाहिड़ी ने अपने साथियों को समझाया कि संविधान सभा अंग्रेज़ों की बनाई हुई है और वह 'अंग्रेज़ों की योजना को साकार करने का काम कर रही है।'

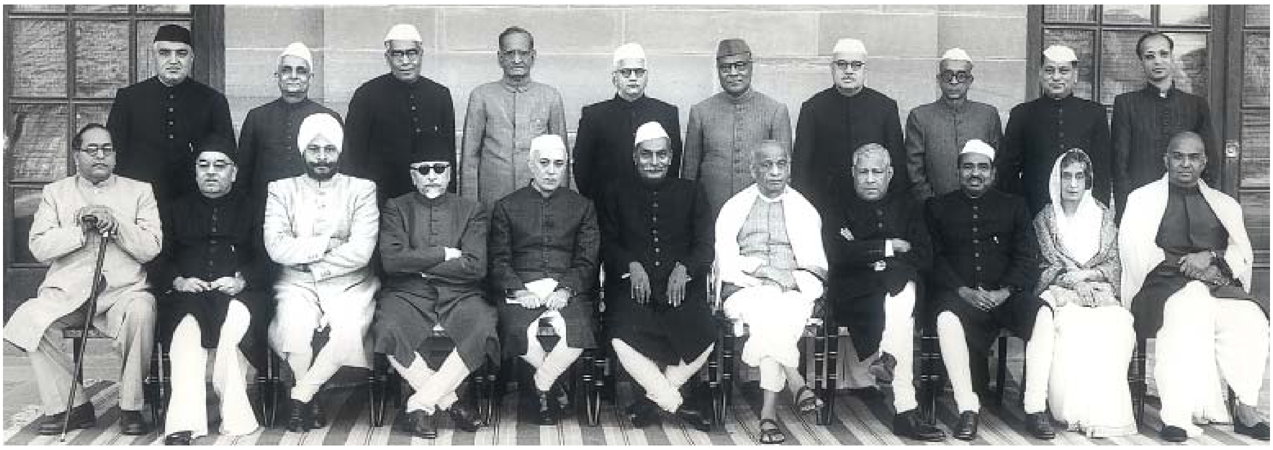

चित्र 15.6
अंतरिम सरकार के सदस्य
राजेंद्र प्रसाद मध्य में बैठे हैं। उनके दाहिनी ओर जवाहरलाल नेहरू तथा बाईं ओर सरदार पटेल हैं। इसी कतार में एकदम बाईं ओर बी.आर. अम्बेडकर तथा एकदम दाहिनी ओर श्यामाप्रसाद मुखर्जी हैं।

स्रोत 2

"बहुत अच्छा महोदय – साहसिक शब्द, उदात्त शब्द"

सोमनाथ लाहिड़ी ने कहा था :

महोदय मैं पंडित नेहरू को इस बात के लिए मुबारकबाद देना चाहता हूँ कि उन्होंने यह कह कर भारतीय जनता की भावना को इतने सटीक शब्दों में व्यक्त किया है कि भारत के लोग अंग्रेज़ों द्वारा थोपी गई किसी चीज को स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने कहा कि इस तरह की जबरदस्ती पर असंतोष व आपत्ति व्यक्त की जाएगी और अगर आवश्यकता हुई तो हम संघर्ष की घाटी में उतरेंगे। बहुत अच्छा महोदय – साहसिक शब्द, उदात्त शब्द।

परंतु देखना यह है कि इस चुनौती को आप कैसे और कब साकार करते हैं। महोदय, मसला यह है कि यह जबरदस्ती इसी समय की जा रही है। न केवल ब्रिटिश योजना ने भावी संविधान बना दिया है... जो अंग्रेज़ों की संतुष्टि पर आश्रित होगा बल्कि इससे यह भी संकेत मिलता है कि मामूली से मामूली मतभेद के लिए भी आपको संघीय न्यायालय तक दौड़ना होगा या वहाँ इंग्लैंड में जाकर नाचना पड़ेगा; या ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली या किसी और के दरवाज़े पर दस्तक देनी होगी। केवल यही सच नहीं है कि हम चाहे जो भी योजना क्यों न बनाएँ यह संविधान सभा ब्रिटिश बंदूकों, ब्रिटिश सेना, उनके आर्थिक व वित्तीय शिकंजे के साये में है – इसका मतलब यह निकलता है कि मूल रूप से सत्ता अभी भी अंग्रेज़ों के हाथ में है और सत्ता का प्रश्न बुनियादी तौर पर अभी तय नहीं हुआ है, जिसका अर्थ यह निकलता है कि हमारा भविष्य अभी भी पूरी तरह हमारे हाथों में नहीं है। इतना ही नहीं, हाल ही में एटली तथा अन्य लोगों द्वारा दिए गए वक्तव्यों में यह भी स्पष्ट हो गया है कि अगर ज़रूरत पड़ी तो वे विभाजन से भी पीछे नहीं हटेंगे। महोदय इसका आशय यह है कि इस देश में कोई स्वतंत्रता नहीं है। जैसा कि अभी कुछ दिन पहले सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा था, हमारे पास केवल आपस में लड़ने की स्वतंत्रता है। हमें बस इतनी ही स्वतंत्रता मिली है...। इसलिए हमारा विनम्र सुझाव है कि यहाँ सवाल इस योजना की रूपरेखा के जरिए कुछ पा लेने का नहीं बल्कि यहाँ और अभी स्वतंत्रता की घोषणा करने और अंतरिम सरकार, भारत की जनता से यह आह्वान करने का है कि वे आपस में लड़ने की बजाय अपने शत्रु को देखें, जिसके हाथ में अभी भी कोड़ा है, वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को देखें – और उससे मिलकर लड़ने के लिए आगे बढ़ें और जब हम स्वतंत्र हो जाएँगे, तब हम अपने दावों का हल ढूँढ़ सकते हैं।

संविधान सभा बहस, खंड 1

नेहरू ने स्वीकार किया कि ज़्यादातर राष्ट्रवादी नेता एक भिन्न प्रकार की संविधान सभा चाहते थे। एक लिहाज से यह भी सही था कि ब्रिटिश सरकार का 'उसके गठन में काफी हाथ था' और उसने सभा के कामकाज पर कुछ शर्तें भी लगा दी थीं। 'परंतु', नेहरू ने कहा, 'आपको उस स्रोत को नज़रअंदाज नहीं करना चाहिए जहाँ से इस सभा को शक्ति मिल रही है।'

> सरकारें सरकारी कागजों से नहीं बनतीं। सरकार जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति होती है। हम यहाँ इसलिए जुटे हैं क्योंकि हमारे पास जनता की ताकत है और हम उतनी दूर तक ही जाएँगे जितनी दूर तक लोग हमें ले जाना चाहेंगे फिर चाहे वे किसी भी समूह या पार्टी से संबंधित क्यों न हों। इसलिए हमें भारतीय जनता के दिलों में समायी आकांक्षाओं और भावनाओं को हमेशा अपने ज़ेहन में रखना चाहिए और उन्हें पूरा करने का प्रयास करना चाहिए।

संविधान सभा उन लोगों की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का साधन मानी जा रही थी जिन्होंने स्वतंत्रता के आंदोलनों में हिस्सा लिया था। लोकतंत्र, समानता तथा न्याय जैसे आदर्श उन्नीसवीं सदी से भारत में सामाजिक संघर्षों के साथ गहरे तौर पर जुड़ चुके थे। जब उन्नीसवीं शताब्दी में समाज सुधारकों ने बाल-विवाह का विरोध किया और विधवा-विवाह का समर्थन किया तो वे सामाजिक न्याय का ही अलख जगा रहे थे। जब विवेकानंद ने हिंदू धर्म में सुधार के लिए मुहिम चलाई तो वह धर्मों को और ज़्यादा न्यायसंगत बनाने का ही प्रयास कर रहे थे। जब महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने दमित जातियों की पीड़ा का सवाल उठाया या कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों ने मजदूरों और किसानों को एकजुट किया तो वे भी आर्थिक और सामाजिक न्याय के लिए ही जूझ रहे थे। एक दमनकारी और अवैध सरकार के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलन अपरिहार्य रूप से लोकतंत्र व न्याय का, नागरिकों के अधिकारों और समानता का संघर्ष भी था।

जैसे-जैसे प्रतिनिधित्व की माँग बढ़ी, अंग्रेज़ों को चरणबद्ध ढंग से संवैधानिक सुधार करने पड़े। प्रांतीय सरकारों में भारतीयों की हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए कई कानून (1909, 1919 और 1935) पारित किए गए। 1919 में कार्यपालिका को आंशिक रूप से प्रांतीय विधायिका के प्रति उत्तरदायी बनाया गया और 1935 के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के अंतर्गत उसे लगभग पूरी तरह विधायिका के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। जब गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के तहत 1937 में चुनाव हुए तो 11 में से 8 प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी।

➲ स्रोत 2 में वक्ता को ऐसा क्यों लगता है कि संविधान सभा ब्रिटिश बंदूकों के साये में काम कर रही है।

चित्र 15.7
एडविन मोंटेग्यू (बाएँ) ने ही 1919 के मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों की रूपरेखा तैयार की थी जिनके जरिए प्रांतीय विधायिकाओं में सीमित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था लागू हुई थी।

➲ **चर्चा कीजिए...**

जवाहरलाल नेहरू ने "उद्देश्य प्रस्ताव" पर अपने भाषण में कौन से विचार पेश किए?

इसके बावजूद हम पहले के संवैधानिक बदलावों तथा 1946 से अगले तीन साल के दौरान घटी घटनाओं को स्वाभाविक रूप से एक ही प्रक्रिया का हिस्सा नहीं मान सकते। इससे पहले के संवैधानिक प्रयोग एक प्रतिनिध्यात्मक सरकार के लिए लगातार बढ़ती माँग के जवाब में थे जबकि विभिन्न कानूनों (1909, 1919 और 1935) को पारित करने की प्रक्रिया में भारतीयों की कोई प्रत्यक्ष हिस्सेदारी नहीं थी। उन्हें औपनिवेशिक सरकार ने ही लागू किया था। प्रांतीय निकायों का चुनाव करने वाले निर्वाचन मंडल का दायरा समय के साथ फैलता जा रहा था लेकिन 1935 में भी यह अधिकार वयस्क आबादी के 10–15 प्रतिशत हिस्से तक ही सीमित था। तब तक सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की व्यवस्था नहीं थी। 1935 के कानून के तहत निर्वाचित विधायिकाएँ औपनिवेशिक शासन के ढाँचे में काम कर रही थीं और अंग्रेज़ों द्वारा नियुक्त गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थीं। 13 दिसंबर 1946 को नेहरू जिस कल्पना की बात कर रहे थे वह एक स्वतंत्र संप्रभु भारतीय गणराज्य के संविधान की कल्पना थी।

3. अधिकारों का निर्धारण

नागरिकों के अधिकार किस तरह निर्धारित किए जाएँ? क्या उत्पीड़ित समूहों को कोई विशेष अधिकार मिलने चाहिए? अल्पसंख्यकों के क्या अधिकार हों? वास्तव में अल्पसंख्यक किसे कहा जाए? जैसे-जैसे संविधान सभा के पटल पर बहस आगे बढ़ी, यह साफ हो गया कि इनमें से किसी भी सवाल का कोई ऐसा उत्तर मौजूद नहीं है जिस पर पूरी सभा सहमत हो। इन सवालों के जवाब विचारों में टकराव और व्यक्तिगत मुठभेड़ों से ही पैदा होने थे। अपने उद्घाटन भाषण में नेहरू ने "जनता की इच्छा" का हवाला दिया था और कहा था कि संविधान निर्माताओं को "जनता के दिलों में समायी आकांक्षाओं और भावनाओं" को पूरा करना है। यह कोई आसान काम नहीं था। जैसे-जैसे आज़ादी की उम्मीद पैदा हुई, विभिन्न समूह अलग-अलग तरह से अपनी इच्छाएँ व्यक्त करने लगे। इन सभी अभिव्यक्तियों पर बहस करना ज़रूरी था। परस्पर विरोधी विचारों के बीच किसी समाधान पर पहुँचना और एक आम सहमति पर पहुँचना ज़रूरी था।

3.1 पृथक निर्वाचिका की समस्या

27 अगस्त 1947 को मद्रास के बी. पोकर बहादुर ने पृथक निर्वाचिका बनाए रखने के पक्ष में एक प्रभावशाली भाषण दिया। बहादुर ने कहा कि अल्पसंख्यक सब जगह होते हैं; उन्हें हम चाह कर भी नहीं हटा सकते। हमें ज़रूरत एक ऐसे राजनीतिक ढाँचे की है जिसके भीतर अल्पसंख्यक भी औरों के साथ सद्भाव के साथ जी सकें और समुदायों के बीच मतभेद कम से कम हों। इसके लिए ज़रूरी है कि राजनीतिक व्यवस्था में अल्पसंख्यकों का पूरा प्रतिनिधित्व हो, उनकी आवाज़ सुनी जाए और उनके विचारों पर ध्यान दिया जाए। देश के शासन में मुसलमानों की एक सार्थक हिस्सेदारी

सुनिश्चित करने के लिए पृथक निर्वाचिका के अलावा और कोई रास्ता नहीं हो सकता। बहादुर को लगता था कि मुसलमानों की ज़रूरतों को गैर-मुसलमान अच्छी तरह नहीं समझ सकते; न ही अन्य समुदायों के लोग मुसलमानों का कोई सही प्रतिनिधि चुन सकते हैं।

पृथक निर्वाचिका की हिमायत में दिए गए इस बयान से ज़्यादातर राष्ट्रवादी भड़क गए। इसके बाद जो गरमागरम बहस चली उसमें इस माँग के खिलाफ तरह-तरह के तर्क दिए गए। ज़्यादातर राष्ट्रवादियों को लग रहा था कि पृथक निर्वाचिका की व्यवस्था लोगों को बाँटने के लिए अंग्रेज़ों की चाल थी। आर.वी. धुलेकर ने बहादुर को संबोधित करते हुए कहा था, "अंग्रेज़ों ने संरक्षण के नाम पर अपना खेल खेला। इसकी आड़ में उन्होंने तुम्हें (अल्पसंख्यकों) फुसला लिया है। अब इस आदत को छोड़ दो...। अब कोई तुम्हें बहकाने वाला नहीं है।"

विभाजन के कारण तो राष्ट्रवादी नेता पृथक निर्वाचिका के प्रस्ताव पर और भड़कने लगे थे। उन्हें निरंतर गृहयुद्ध, दंगों और हिंसा की आशंका दिखाई देती थी। सरदार पटेल ने कहा था कि पृथक निर्वाचिका एक ऐसा "विष है जो हमारे देश की पूरी राजनीति में समा चुका है।" उनकी राय में यह एक ऐसी माँग थी जिसने एक समुदाय को दूसरे समुदाय से भिड़ा दिया, राष्ट्र के टुकड़े कर दिए, रक्तपात को जन्म दिया और देश के विभाजन का कारण बनी। पटेल ने कहा, "क्या तुम इस देश में शांति चाहते हो? अगर चाहते हो तो इसे (पृथक निर्वाचिका को) फौरन छोड़ दो।"

चित्र 15.8
1946 के जाड़ों में भारतीय नेता एटली के साथ वार्ता करने लंदन गए। इन वार्ताओं का कोई नतीजा नहीं निकला। (बाएँ से दाएँ - लियाकत अली, मोहम्मद अली जिन्ना, बलदेव सिंह, पैथिक-लॉरेंस)

स्रोत 3

"अंग्रेज़ तो चले गए, मगर जाते-जाते शरारत का बीज बो गए"

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कहा था :

यह दोहराने का कोई मतलब नहीं है कि हम पृथक निर्वाचिका की माँग इसलिए कर रहे हैं क्योंकि हमारे लिए यही अच्छा है। यह बात हम बहुत समय से सुन रहे हैं। हम सालों से यह सुन रहे हैं और इसी आंदोलन के कारण अब हम एक विभाजित राष्ट्र हैं...। क्या आप मुझे एक भी स्वतंत्र देश दिखा सकते हैं जहाँ पृथक निर्वाचिका हो? अगर आप मुझे दिखा दें तो मैं आपकी बात मान लूँगा। लेकिन अगर इस अभागे देश में विभाजन के बाद भी पृथक निर्वाचिका की व्यवस्था बनाए रखी गई तो यहाँ जीने का कोई मतलब नहीं होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि यह सिर्फ मेरे भले की बात नहीं है बल्कि आपका भला भी इसी में है कि हम अतीत को भूल जाएँ। एक दिन हम एकजुट हो सकते हैं...। अंग्रेज़ तो चले गए, मगर जाते-जाते शरारत का बीज बो गए हैं। हम इस शरारत को और बढ़ाना नहीं चाहते। (सुनिए, सुनिए)। जब अंग्रेज़ों ने यह विचार पेश किया था तो उन्होंने यह उम्मीद नहीं की थी कि उन्हें इतनी जल्दी भागना पड़ेगा। उन्होंने तो अपने शासन की सुविधा के लिए यह किया था। खैर, कोई बात नहीं। मगर अब वे अपनी विरासत पीछे छोड़ गए हैं। अब हम इससे बाहर निकलेंगे या नहीं?

संविधान सभा बहस, खंड 5

पृथक निर्वाचिकाओं की माँग का जवाब देते हुए गोविन्द वल्लभ पंत ने ऐलान किया कि यह प्रस्ताव न केवल राष्ट्र के लिए बल्कि अल्पसंख्यकों के लिए भी खतरनाक है। वह बहादुर के इस विचार से सहमत थे कि किसी लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि समाज के विभिन्न तबकों में वह कितना आत्मविश्वास पैदा कर पाती है। उन्हें इस तर्क पर भी कोई आपत्ति नहीं थी कि एक मुक्त देश में प्रत्येक नागरिक के साथ ऐसा आचरण किया जाना चाहिए जिससे "न केवल उसकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो बल्कि उसमें स्वाभिमान का आध्यात्मिक भाव भी पैदा हो" तथा बहुल समुदाय का यह दायित्व है कि वह अल्पसंख्यकों की समस्याओं को समझे, उनकी आकांक्षाओं को महसूस करे। इसके बावजूद पंत पृथक निर्वाचिका का विरोध कर रहे थे। उनका कहना था कि यह एक आत्मघाती माँग है जो अल्पसंख्यकों को स्थायी रूप से अलग-थलग कर देगी, उन्हें कमज़ोर बना देगी और शासन में उन्हें प्रभावी हिस्सेदारी नहीं मिल पाएँगी।

स्रोत 4

"मेरा मानना है कि पृथक निर्वाचिका अल्पसंख्यकों के लिए आत्मघाती साबित होगी।"

27 अगस्त 1947 को संविधान सभा की बहस में गोविंद वल्लभ पंत ने कहा था :

> मेरा मानना है कि पृथक निर्वाचिका अल्पसंख्यकों के लिए आत्मघाती साबित होगी और उन्हें बहुत भारी नुकसान पहुँचाएगी। अगर उन्हें हमेशा के लिए अलग-थलग कर दिया गया तो वे कभी भी खुद को बहुसंख्यकों में रूपांतरित नहीं कर पाएँगे। निराशा का भाव शुरू से उन्हें अपंग बना देगा। आप क्या चाहते हैं और हमारा अंतिम उद्देश्य क्या है? क्या अल्पसंख्यक हमेशा अल्पसंख्यकों के रूप में ही रहना चाहते हैं या वे भी एक दिन एक महान राष्ट्र का अभिन्न अंग बनने और उसकी नियति को निर्धारित व नियंत्रित करने का सपना देखते हैं? मेरा विचार है कि अगर उन्हें शेष समुदाय से अलग रखा जाता है और ऐसे हवाबंद कमरे में काटकर रखा जाता है जहाँ उन्हें हवा के लिए भी औरों पर निर्भर रहना पड़ेगा तो यह उनके लिए भयानक रूप से खतरनाक होगा...। अगर अल्पसंख्यक पृथक निर्वाचिकाओं से जीतकर आते रहे तो कभी प्रभावी योगदान नहीं दे पाएँगे।

संविधान सभा बहस, खंड 2

➲ स्रोत 3 और 4 को पढ़िए। पृथक निर्वाचिकाओं के विरोध में कौन-कौन से तर्क दिए गए हैं?

इन सारी दलीलों के पीछे एक एकीकृत राज्य के निर्माण की चिंता काम कर रही थी। राजनीतिक एकता और राष्ट्र की स्थापना करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को राज्य के नागरिक के साँचे में ढालना था, हर समूह को

राष्ट्र के भीतर समाहित किया जाना था। संविधान नागरिकों को अधिकार देगा परंतु नागरिकों को भी राज्य के प्रति अपनी निष्ठा का वचन लेना होगा। समुदायों को सांस्कृतिक इकाइयों के रूप में मान्यता दी जा सकती थी और उन्हें सांस्कृतिक अधिकारों का आश्वासन दिया जा सकता था। मगर राजनीतिक रूप से सभी समुदायों के सदस्यों को राज्य के सामान्य सदस्यों के रूप में काम करना था अन्यथा उनकी निष्ठाएँ विभाजित होतीं। पंत ने कहा, "हमारे भीतर यह आत्मघाती और अपमानजनक आदत बनी हुई है कि हम कभी नागरिक के रूप में नहीं सोचते बल्कि समुदाय के रूप में ही सोच पाते हैं...। हमें याद रखना चाहिए कि महत्त्व केवल नागरिक का होता है। सामाजिक पिरामिड का आधार भी और उसकी चोटी भी नागरिक ही होता है।" जब सामुदायिक अधिकारों का महत्त्व रेखांकित किया जा रहा था, उस समय भी बहुत सारे राष्ट्रवादियों में यह भय सिर उठाने लगा था कि इससे निष्ठाएँ खंडित होंगी और एक शक्तिशाली राष्ट्र व शक्तिशाली राज्य की स्थापना नहीं हो पाएगी।

सारे मुसलमान भी पृथक निर्वाचिका की माँग के समर्थन में नहीं थे। उदाहरण के लिए, बेगम ऐज़ाज़ रसूल को लगता था कि पृथक निर्वाचिका आत्मघाती साबित होगी क्योंकि इससे अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों से कट जाएँगे। 1949 तक संविधान सभा के ज़्यादातर सदस्य इस बात पर सहमत हो गए थे कि पृथक निर्वाचिका का प्रस्ताव अल्पसंख्यकों के हितों के खिलाफ जाता है। इसकी बजाय मुसलमानों को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए ताकि राजनीतिक व्यवस्था में उनको एक निर्णायक आवाज़ मिल सके।

3.2 "केवल इस प्रस्ताव से काम चलने वाला नहीं है"

उद्देश्य प्रस्ताव का स्वागत करते हुए किसान आंदोलन के नेता और समाजवादी विचारों वाले एन.जी. रंगा ने आह्वान किया कि अल्पसंख्यक शब्द की व्याख्या आर्थिक स्तर पर की जानी चाहिए। रंगा की नज़र में असली अल्पसंख्यक गरीब और दबे-कुचले लोग थे। उन्होंने इस बात का स्वागत किया कि संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को कानूनी अधिकार दिए जा रहे हैं मगर उन्होंने इसकी सीमाओं को भी चिह्नित किया। उन्होंने कहा कि जब तक संविधानसम्मत अधिकारों को लागू करने का प्रभावी इंतज़ाम नहीं किया जाएगा तब तक गरीबों के लिए इस बात का कोई मतलब नहीं है कि अब उनके पास जीने का, पूर्ण रोजगार का अधिकार आ गया है; या अब वे सभा कर सकते हैं, सम्मेलन कर सकते हैं, संगठन बना सकते हैं और उनके पास अन्य नागरिक स्वतंत्रताएँ हैं। यह ज़रूरी था कि ऐसी परिस्थितियाँ बनाई जाएँ जहाँ संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों का जनता प्रभावी ढंग से प्रयोग कर सके। रंगा ने कहा कि, "उन्हें सहारों की ज़रूरत है। उन्हें एक सीढ़ी चाहिए।"

स्रोत 5

"खंडित निष्ठा के लिए कोई जगह नहीं"

गोविंद वल्लभ पंत ने कहा कि निष्ठावान नागरिक बनने के लिए लोगों को समुदाय और खुद को बीच में रख कर सोचने की आदत छोड़नी होगी :

> लोकतंत्र की सफलता के लिए व्यक्ति को आत्मानुशासन की कला का प्रशिक्षण लेना होगा। लोकतंत्र में व्यक्ति को अपने लिए कम तथा औरों के लिए ज़्यादा फिक्र करनी चाहिए। यहाँ खंडित निष्ठा के लिए कोई जगह नहीं है। सारी निष्ठाएँ केवल राज्य पर केंद्रित होनी चाहिए। यदि किसी लोकतंत्र में आप प्रतिस्पर्धी निष्ठाएँ रख देते हैं या ऐसी व्यवस्था खड़ी कर देते हैं जिसमें कोई व्यक्ति या समूह अपने अपव्यय पर अंकुश लगाने की बजाय बृहत्तर या अन्य हितों की ज़रा भी परवाह नहीं करता, तो ऐसे लोकतंत्र का डूबना निश्चित है।

संविधान सभा बहस, खंड 2

➲ जी. बी. पंत निष्ठावादी नागरिकों के अभिलक्षणों को कैसे परिभाषित करते हैं?

स्रोत 6

"जी नहीं, असली अल्पसंख्यक इस देश की जनता है"

जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत किए गए उद्देश्य प्रस्ताव का स्वागत करते हुए एन.जी. रंगा ने कहा था :

> महोदय, अल्पसंख्यकों के बारे में बहुत बातें हो रही हैं। असली अल्पसंख्यक कौन हैं? तथाकथित पाकिस्तानी प्रांतों में रहने वाले हिंदू, सिख और यहाँ तक मुसलमान भी अल्पसंख्यक नहीं हैं। जी नहीं, असली अल्पसंख्यक तो इस देश की जनता है। यह जनता इतनी दबी-कुचली और इतनी उत्पीड़ित है कि अभी तक साधारण नागरिक के अधिकारों का लाभ भी नहीं उठा पा रही है। स्थिति क्या है? आप आदिवासी इलाकों में जाइए। उनके अपने कानूनों, उनके जनजातीय कानूनों, उनकी ज़मीन को उनसे नहीं छीना जा सकता। लेकिन हमारे व्यापारी वहाँ जाते हैं, और तथाकथित मुक्त बाज़ार के नाम पर उनकी ज़मीन छीन लेते हैं। भले ही कानून ज़मीन की इस बेदखली के खिलाफ हो, व्यापारी इन आदिवासियों को तरह-तरह के बंधनों में जकड़कर गुलाम बना लेते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी दासता के नर्क में ढकेल देते हैं। आइए अब आम गाँव वालों को देख लेते हैं। वहाँ सूदखोर पैसा लेकर जाता है और गाँव वालों को अपनी जेब में डाल लेता है। वहाँ ज़मींदार हैं और मालगुजार व अन्य लोग हैं जो इन गरीब देहातियों का शोषण करते हैं। इन लोगों में मूलभूत शिक्षा तक नहीं है। असली अल्पसंख्यक यही लोग हैं जिन्हें सुरक्षा और सुरक्षा का आश्वासन मिलना चाहिए। उन्हें आवश्यक सुरक्षा प्रदान करने के लिए केवल इस प्रस्ताव से काम चलने वाला नहीं है...।
>
> *संविधान सभा बहस, खंड 2*

➲ रंगा द्वारा 'अल्पसंख्यक' की अवधारणा को किस तरह परिभाषित किया गया है?

रंगा ने आम जनता और संविधान सभा में उसके प्रतिनिधित्व का दावा करने वालों के बीच मौजूद विशाल खाई की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया। उन्होंने पूछा :

> हम किसका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं? अपने देश की आम जनता का। और इसके बावजूद हममें से ज़्यादातर लोग उस जनता का हिस्सा नहीं हैं। हम उनके हैं, उनके लिए काम करना चाहते हैं, लेकिन जनता खुद संविधान सभा तक नहीं पहुँच पा रही है। इसमें कुछ समय लग सकता है, तब तक हम यहाँ उनके ट्रस्टी हैं, उनके हिमायती हैं और उनके पक्ष में आवाज़ उठाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं।

रंगा ने आदिवासियों को भी ऐसे ही समूहों में गिनाया था। इस समूह के प्रतिनिधियों में जयपाल सिंह जैसे ज़बरदस्त वक्ता भी शामिल थे। उद्देश्य प्रस्ताव का स्वागत करते हुए जयपाल सिंह ने कहा था :

> ... एक आदिवासी होने के नाते मुझसे यह उम्मीद नहीं की जाती कि मैं इस प्रस्ताव की पेचीदगियों को समझता होऊँगा। लेकिन मेरा सहज विवेक कहता है कि हममें से हरेक व्यक्ति को मुक्ति के उस मार्ग पर चलना चाहिए और मिलकर लड़ना चाहिए। महोदय, अगर भारतीय जनता में ऐसा कोई समूह है जिसके साथ सही व्यवहार नहीं किया गया है तो वह मेरा समूह है। मेरे लोगों को पिछले 6,000 साल से अपमानित किया जा रहा है, उपेक्षित किया जा रहा है...। मेरे समाज का पूरा इतिहास भारत के गैर-मूल निवासियों के हाथों लगातार शोषण और छीनाझपटी का इतिहास रहा है जिसके बीच में जब-तब विद्रोह और अव्यवस्था भी फैली है। इसके बावजूद मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों पर विश्वास करता हूँ। मैं आप सबके इस संकल्प का विश्वास करता हूँ कि अब हम एक नया अध्याय रचने जा रहे हैं। स्वतंत्र भारत का एक ऐसा अध्याय जहाँ सबके पास अवसरों की समानता होगी, जहाँ किसी की उपेक्षा नहीं होगी।

सिंह ने आदिवासियों की सुरक्षा तथा उन्हें आम आबादी के स्तर पर लाने के लिए ज़रूरी परिस्थितियाँ रचने की आवश्यकता पर सुंदर वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा कि आदिवासी कबीले संख्या की दृष्टि से अल्पसंख्यक नहीं हैं लेकिन उन्हें संरक्षण की आवश्यकता है। उन्हें वहाँ से बेदखल कर दिया गया जहाँ वे रहते थे, उन्हें उनके जंगलों और चारागाहों से वंचित कर दिया गया, उन्हें नए घरों की तलाश में भागने के लिए मजबूर किया गया। उन्हें आदिम और पिछड़ा मानते हुए शेष समाज उन्हें हिकारत की नज़र से देखता है। जयपाल ने आदिवासियों और शेष समाज के बीच मौजूद भावनात्मक और भौतिक फासले को खत्म करने के लिए बड़ा जज़बाती बयान दिया : "हमारा कहना है कि आपको हमारे साथ घुलना-मिलना चाहिए। हम आपके साथ मेलजोल चाहते हैं...।" जयपाल सिंह पृथक निर्वाचिका के हक में नहीं थे लेकिन उनको भी यह लगता था कि विधायिका में आदिवासियों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए सीटों के आरक्षण की व्यवस्था ज़रूरी है। उन्होंने कहा कि इस तरह औरों को आदिवासियों की आवाज़ सुनने और उनके पास आने के लिए मजबूर किया जा सकेगा।

3.3 "हमें हज़ारों साल तक दबाया गया है"

संविधान में दमित जातियों (Dispressed Castes) के अधिकारों को किस तरह परिभाषित किया जाए? राष्ट्रीय आंदोलनों के दौरान अम्बेडकर ने दमित जातियों के लिए पृथक निर्वाचिकाओं की माँग की थी जिसका

स्रोत 7

"हम अपनी सामाजिक अक्षमताओं को हटाना चाहते हैं"

मद्रास की दक्षायणी वेलायुधान की दलील थी :

> हमें सब तरह की सुरक्षाएँ नहीं चाहिए। इस देश के कमज़ोरों को नैतिक सुरक्षा का आवरण चाहिए ...। मैं यह नहीं मान सकती कि सात करोड़ हरिजनों को अल्पसंख्यक माना जा सकता है...। जो हम चाहते हैं वह यह है... हमारी सामाजिक अपंगताओं का फौरन खात्मा।

संविधान सभा बहस, खंड 1

स्रोत 8

हमने विशेषाधिकार कभी नहीं माँगे

बम्बई की हंसा मेहता ने महिलाओं के लिए न्याय की माँग की, आरक्षित सीटों की नहीं और न ही पृथक चुनाव क्षेत्र की :

> हमने विशेषाधिकार कभी नहीं माँगे। हमने सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय और राजनीतिक न्याय की माँग की है। हमने उस बराबरी की माँग की है जिसके बिना पारस्परिक आदर और समझ नहीं बन सकते, जिसके बिना पुरुष और महिला के बीच वास्तविक सहयोग संभव नहीं है।

महात्मा गाँधी ने यह कहते हुए विरोध किया था कि ऐसा करने से ये समुदाय स्थायी रूप से शेष समाज से कट जाएँगे। संविधान सभा इस विवाद को कैसे हल कर सकती थी? दमित जातियों को किस तरह की सुरक्षा दी जा सकती थी?

दमित जातियों के कुछ सदस्यों का आग्रह था कि "अस्पृश्यों" (अछूतों) की समस्या को केवल संरक्षण और बचाव के ज़रिए हल नहीं किया जा सकता। उनकी अपंगता के पीछे जाति विभाजित समाज के सामाजिक कायदे-कानूनों और नैतिक मूल्य-मान्यताओं का हाथ है। समाज ने उनकी सेवाओं और श्रम का इस्तेमाल किया है परंतु उन्हें सामाजिक तौर पर खुद से दूर रखा है, अन्य जातियों के लोग उनके साथ घुलने-मिलने से कतराते हैं, उनके साथ खाना नहीं खाते और उन्हें मंदिरों में नहीं जाने दिया जाता। मद्रास के सदस्य जे. नागप्पा ने कहा था, "हम सदा कष्ट उठाते रहे हैं पर अब और कष्ट उठाने को तैयार नहीं हैं। हमें अपनी ज़िम्मेदारियों का अहसास हो गया है। हमें मालूम है कि अपनी बात कैसे मनवानी है।"

नागप्पा ने कहा कि संख्या की दृष्टि से हरिजन अल्पसंख्यक नहीं हैं। आबादी में उनका हिस्सा 20-25 प्रतिशत है। उनकी पीड़ा का कारण यह है कि उन्हें बाकायदा समाज व राजनीति के हाशिए पर रखा गया है। उसका कारण उनकी संख्यात्मक महत्त्वहीनता नहीं है। उनके पास न तो शिक्षा तक पहुँच थी और न ही शासन में हिस्सेदारी। सवर्ण बहुमत वाली संविधान सभा को संबोधित करते हुए मध्य प्रांत के श्री के.जे. खाण्डेलकर ने कहा था :

> हमें हज़ारों साल तक दबाया गया है। ... दबाया गया ... इस हद तक दबाया कि हमारे दिमाग, हमारी देह काम नहीं करती और अब हमारा हृदय भी भावशून्य हो चुका है। न ही हम आगे बढ़ने के लायक रह गए हैं। यही हमारी स्थिति है।

बँटवारे की हिंसा के बाद अम्बेडकर तक ने पृथक निर्वाचिका की माँग छोड़ दी थी। संविधान सभा ने अंततः यह सुझाव दिया कि अस्पृश्यता का उन्मूलन किया जाए, हिंदू मंदिरों को सभी जातियों के लिए खोल दिया जाए और निचली जातियों को विधायिकाओं और सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया जाए। बहुत सारे लोगों का मानना था कि इससे भी सारी समस्याएँ हल नहीं हो पाएँगी। सामाजिक भेदभाव को केवल संवैधानिक कानून पारित करके खत्म नहीं किया जा सकता। समाज की सोच में बदलाव लाना होगा। परंतु लोकतांत्रिक जनता ने इन प्रावधानों का स्वागत किया।

➲ चर्चा कीजिए...

आदिवासियों के लिए सुरक्षात्मक उपायों की माँग करते हुए जयपाल सिंह कौन-कौन से तर्क देते हैं?

4. राज्य की शक्तियाँ

संविधान सभा में इस बात पर काफी बहस हुई कि केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के क्या अधिकार होने चाहिए। जो लोग शक्तिशाली केंद्र के पक्ष में थे उनमें जवाहरलाल नेहरू भी थे। संविधान सभा के अध्यक्ष के नाम लिखे पत्र में उन्होंने कहा था, "अब जबकि विभाजन एक हकीकत बन चुका है... एक दुर्बल केंद्रीय शासन की व्यवस्था देश के लिए हानिकारक होगी क्योंकि ऐसा केंद्र शांति स्थापित करने में, आम सरोकारों के बीच समन्वय स्थापित करने में और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पूरे देश के लिए आवाज़ उठाने में सक्षम नहीं होगा।"

संविधान के मसविदे में विषयों की तीन सूचियाँ बनाई गयी थीं : केंद्रीय सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। पहली सूची के विषय केवल केंद्र सरकार के अधीन होने थे जबकि दूसरी सूची के विषय केवल राज्य सरकारों के अंतर्गत आते। तीसरी सूची के विषय केंद्र और राज्य, दोनों की साझा ज़िम्मेदारी थे। परंतु अन्य संघों की तुलना में बहुत ज़्यादा विषयों को केवल केंद्रीय नियंत्रण में रखा गया था। समवर्ती सूची में भी प्रांतों की इच्छाओं की उपेक्षा करते हुए बहुत ज़्यादा विषय रखे गए। खनिज पदार्थों तथा प्रमुख उद्योगों पर भी केंद्र सरकार को ही नियंत्रण दिया गया। अनुच्छेद 356 में गवर्नर की सिफारिश पर केंद्र सरकार को राज्य सरकार के सारे अधिकार अपने हाथ में लेने का अधिकार दे दिया।

संविधान में राजकोषीय संघवाद की भी एक जटिल व्यवस्था बनाई गयी। कुछ करों (जैसे- सीमा शुल्क और कंपनी कर) से होने वाली सारी आय केंद्र सरकार के पास रखी गई; कुछ अन्य मामलों में (जैसे - आय कर और आबकारी शुल्क) में होने वाली आय राज्य और केंद्र सरकारों के बीच बाँट दी गई तथा अन्य मामलों से होने वाली आय (जैसे राज्य स्तरीय शुल्क) पूरी तरह राज्यों को सौंप दी गई। राज्य सरकारों को अपने स्तर पर भी कुछ अधिभार और कर वसूलने का अधिकार दिया गया। उदाहरण के लिए, वे ज़मीन और संपत्ति कर, ब्रिकी कर तथा बोतलबंद शराब पर अलग से कर वसूल कर सकते थे।

4.1 "केंद्र बिखर जाएगा"

राज्यों के अधिकारों की सबसे शक्तिशाली हिमायत मद्रास के सदस्य के. सन्तनम ने पेश की। उन्होंने कहा कि न केवल राज्यों को बल्कि केंद्र को मजबूत बनाने के लिए भी शक्तियों का पुनर्वितरण ज़रूरी है। "यह दलील एक ज़िद-सी बन गई है कि तमाम शक्तियाँ केंद्र को सौंप देने से वह मजबूत हो जाएगा।" सन्तनम ने कहा कि यह गलतफहमी है। अगर केंद्र के पास ज़रूरत से ज़्यादा ज़िम्मेदारियाँ होंगी तो वह प्रभावी ढंग से काम नहीं कर पाएगा। उसके कुछ दायित्वों में कमी करने से और उन्हें राज्यों को सौंप देने से केंद्र ज़्यादा मजबूत हो सकता है।

स्रोत 9

बेहतर देशभक्त कौन है?

मैसूर के सर ए. रामास्वामी मुदालियार ने 21 अगस्त 1947 की बहस में कहा था :

शक्तिशाली केंद्र की हिमायत के बहाने दिल को यह तसल्ली देने का कोई फायदा नहीं है कि हम ज़्यादा बड़े देशभक्त हैं और जो इन संसाधनों पर कड़ी नज़र रखना चाहते हैं उनके भीतर राष्ट्रीय भावना या देशभक्ति का अभाव है।

जहाँ तक राज्यों का सवाल है, सन्तनम का मानना था कि शक्तियों का मौजूदा वितरण उनको पंगु बना देगा। राजकोषीय प्रावधान प्रांतों को खोखला कर देगा क्योंकि भूराजस्व के अलावा ज़्यादातर कर केंद्र सरकार के अधिकार में दे दिए गए हैं। यदि पैसा ही नहीं होगा तो राज्यों में विकास परियोजनाएँ कैसे चलेंगी। "मैं ऐसा संविधान नहीं चाहता जिसमें इकाई को आकर केंद्र से यह कहना पड़े कि 'मैं अपने लोगों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकता। मैं उन्हें साफ-सफाई नहीं दे सकता, मुझे सड़कों में सुधार, उद्योगों की स्थापना के लिए खैरात दे दीजिए।' बेहतर होगा कि हम संघीय व्यवस्था को पूरी तरह खत्म कर दें और एकल व्यवस्था (यूनिटरी सिस्टम) स्थापित करें।" सन्तनम ने कहा कि अगर पर्याप्त जाँच-पड़ताल किए बिना शक्तियों का प्रस्तावित वितरण लागू किया गया तो हमारा भविष्य अंधकार में पड़ जाएगा। उन्होंने कहा कि कुछ ही सालों में सारे प्रांत "केंद्र के विरुद्ध" उठ खड़े होंगे।

प्रांतों के बहुत सारे दूसरे सदस्य भी इसी तरह की आशंकाओं से परेशान थे। उन्होंने इस बात के लिए जमकर ज़ोर लगाया कि समवर्ती सूची और केंद्रीय सूची में कम से कम विषयों को रखा जाए। उड़ीसा के एक सदस्य ने यहाँ तक चेतावनी दे डाली कि संविधान में शक्तियों के बेहिसाब केंद्रीकरण के कारण "केंद्र बिखर जाएगा।"

4.2 "आज हमें एक शक्तिशाली सरकार की आवश्यकता है"

प्रांतों के लिए अधिक शक्तियों की माँग से सभा में तीखी प्रतिक्रियाएँ आने लगीं। शक्तिशाली केंद्र की ज़रूरत को असंख्य अवसरों पर रेखांकित किया जा चुका था। अम्बेडकर ने घोषणा की थी कि वह "एक शक्तिशाली और एकीकृत केंद्र (सुनिए, सुनिए); 1935 के गवर्नमेंट एक्ट में हमने जो केंद्र बनाया था उससे भी ज़्यादा शक्तिशाली केंद्र" चाहते हैं। सड़कों पर हो रही जिस हिंसा के कारण देश टुकड़े-टुकड़े हो रहा था, उसका हवाला देते हुए बहुत सारे सदस्यों ने बार-बार यह कहा कि केंद्र की शक्तियों में भारी इज़ाफा होना चाहिए ताकि वह सांप्रदायिक हिंसा को रोक सके। प्रांतों के लिए अधिक शक्तियों की माँग का जवाब देते हुए गोपालस्वामी अय्यर ने ज़ोर देकर कहा कि "केंद्र ज़्यादा से ज़्यादा मजबूत होना चाहिए।" संयुक्त प्रांत के एक सदस्य बालकृष्ण शर्मा ने विस्तार से इस बात पर प्रकाश डाला कि एक शक्तिशाली केंद्र का होना ज़रूरी है ताकि वह देश के हित में योजना बना सके, उपलब्ध आर्थिक संसाधनों को जुटा सके, एक उचित शासन व्यवस्था स्थापित कर सके और देश को विदेशी आक्रमण से बचा सके।

विभाजन से पहले कांग्रेस ने प्रांतों को काफी स्वायत्तता देने पर अपनी सहमति व्यक्त की थी। कुछ हद तक यह मुस्लिम लीग को इस बात का

भरोसा दिलाने की कोशिश थी कि जिन प्रांतों में लीग की सरकार बनी है वहाँ दखलअंदाज़ी नहीं की जाएगी। बँटवारे को देखने के बाद ज़्यादातर राष्ट्रवादियों की राय बदल चुकी थी। उनका कहना था कि अब एक विकेंद्रीकृत संरचना के लिए पहले जैसे राजनैतिक दवाब नहीं बचे हैं।

औपनिवेशिक शासन द्वारा थोपी गई एकल व्यवस्था पहले से ही मौजूद थी। उस ज़माने में हुई घटनाओं से केंद्रीयतावाद को बढ़ावा मिला जिसे अब अफरा-तफरी पर अंकुश लगाने तथा देश के आर्थिक विकास की योजना बनाने के लिए और भी ज़रूरी माना जाने लगा। इस प्रकार संविधान में भारतीय संघ के घटक राज्यों के अधिकारों की तुलना में केंद्र के अधिकारों की ओर स्पष्ट झुकाव दिखाई देता है।

➲ चर्चा कीजिए...

एक शक्तिशाली केंद्र सरकार की हिमायत में क्या दलीलें दी जा रही थीं?

5. राष्ट्र की भाषा

जब एक देश के विभिन्न भागों में लोग अलग-अलग भाषाएँ बोलते हों, उनकी सांस्कृतिक विरासत अलग हो तो एक राष्ट्र का निर्माण कैसे किया जा सकता है? कैसे लोग एक-दूसरे की बात सुन सकते हैं या एक-दूसरे से जुड़ सकते हैं जबकि वे एक-दूसरे की भाषा भी नहीं समझते? संविधान सभा में भाषा के मुद्दे पर कई महीनों तक बहस हुई और कई बार काफी तनातनी पैदा हो गई।

तीस के दशक तक कांग्रेस ने यह मान लिया था कि हिंदुस्तानी को राष्ट्रीय भाषा का दर्ज़ा दिया जाए। महात्मा गाँधी का मानना था कि हरेक को एक ऐसी भाषा बोलनी चाहिए जिसे लोग आसानी से समझ सकें। हिंदी और उर्दू के मेल से बनी हिंदुस्तानी भारतीय जनता के बहुत बड़े हिस्से की भाषा थी और यह विविध संस्कृतियों के आदान-प्रदान से समृद्ध हुई एक साझी भाषा थी। जैसे-जैसे समय बीता, बहुत तरह के स्रोतों से नए-नए शब्द और अर्थ इसमें समाते गए और उसे विभिन्न क्षेत्रों के बहुत सारे लोग समझने लगे। महात्मा गाँधी को लगता था कि यह बहुसांस्कृतिक भाषा विविध समुदायों के बीच संचार की आदर्श भाषा हो सकती है : वह हिंदुओं और मुसलमानों को, उत्तर और दक्षिण के लोगों को एकजुट कर सकती है।

लेकिन उन्नीसवीं सदी के आखिर से एक भाषा के रूप में हिंदुस्तानी धीरे-धीरे बदल रही थी। जैसे-जैसे सांप्रदायिक टकराव गहरे होते जा रहे थे, हिंदी और उर्दू एक-दूसरे से दूर जा रही थीं। एक तरफ तो फ़ारसी और अरबी मूल के सारे शब्दों को हटाकर हिंदी को संस्कृतनिष्ठ बनाने की कोशिश की जा रही थी। दूसरी तरफ उर्दू लगातार फ़ारसी के नज़दीक होती जा रही थी। नतीजा यह हुआ कि भाषा भी धार्मिक पहचान की राजनीति का हिस्सा बन गई। लेकिन हिंदुस्तानी के साझा चरित्र में महात्मा गाँधी की आस्था कम नहीं हुई।

स्रोत 10

राष्ट्रीय भाषा की क्या विशेषताएँ होनी चाहिए?

अपनी मृत्यु से कुछ माह पहले महात्मा गाँधी ने भाषा के प्रश्न पर अपने विचार दोहराते हुए कहा था :

> यह हिंदुस्तानी न तो संस्कृतनिष्ठ हिंदी होनी चाहिए और न ही फ़ारसीनिष्ठ उर्दू। यह दोनों का सुंदर मिश्रण होना चाहिए। उसे विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं से शब्द खुलकर उधार लेने चाहिए। विदेशी भाषाओं के ऐसे शब्द लेने में कोई हर्ज नहीं है जो हमारी राष्ट्रीय भाषा में अच्छी तरह और आसानी से घुलमिल सकते हैं। इस प्रकार हमारी राष्ट्रीय भाषा एक समृद्ध और शक्तिशाली भाषा होनी चाहिए जो मानवीय विचारों और भावनाओं के पूरे समुच्चय को अभिव्यक्ति दे सके। खुद को हिंदी या उर्दू से बाँध लेना देशभक्ति की भावना तथा समझदारी के विरुद्ध एक अपराध होगा।

हरिजन सेवक, 12 अक्तूबर 1947

5.1 हिंदी की हिमायत

संविधान सभा के एक शुरुआती सत्र में संयुक्त प्रांत के कांग्रेसी सदस्य आर.वी. धुलेकर ने इस बात के लिए पुरज़ोर शब्दों में आवाज़ उठाई थी कि हिंदी को संविधान निर्माण की भाषा के रूप में इस्तेमाल किया जाए। जब किसी ने कहा कि सभा के सभी सदस्य हिंदी नहीं समझते तो धुलेकर ने पलटकर कहा कि, "इस सदन में जो लोग भारत का संविधान रचने बैठे हैं और हिंदुस्तानी नहीं जानते वे इस सभा की सदस्यता के पात्र नहीं हैं। उन्हें चले जाना चाहिए।" जब इन टिप्पणियों के कारण सभा में हंगामा खड़ा हुआ तो धुलेकर हिंदी में अपना भाषण देते रहे। जवाहरलाल नेहरू के हस्तक्षेप के चलते आखिरकार सदन में शांति बहाल हुई लेकिन भाषा का सवाल अगले तीन साल तक बार-बार कार्रवाइयों में बाधा डालता रहा और सदस्यों को उत्तेजित करता रहा।

तकरीबन 3 साल बाद 12 सितंबर 1947 को राष्ट्र की भाषा के सवाल पर धुलेकर के भाषण ने एक बार फिर तूफान खड़ा कर दिया। तब तक संविधान सभा की भाषा समिति अपनी रिपोर्ट पेश कर चुकी थी। समिति ने राष्ट्रीय भाषा के सवाल पर हिंदी के समर्थकों और विरोधियों के बीच पैदा हो गए गतिरोध को तोड़ने के लिए एक फार्मूला विकसित कर लिया था। समिति ने सुझाव दिया कि देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी भारत की राजकीय भाषा होगी। परंतु इस फार्मूले को समिति ने घोषित नहीं किया था। समिति का मानना था कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए हमें धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए। पहले 15 साल तक सरकारी कामों में अंग्रेज़ी का इस्तेमाल जारी रहेगा। प्रत्येक प्रांत को अपने कामों के लिए कोई एक क्षेत्रीय भाषा चुनने का अधिकार होगा। संविधान सभा की भाषा समिति ने हिंदी को राष्ट्रभाषा की बजाय राजभाषा कहकर विभिन्न पक्षों की भावनाओं को शांत करने और सर्वस्वीकृत समाधान पेश करने का प्रयास किया था।

धुलेकर बीच-बचाव की ऐसी मुद्रा से राज़ी होने वाले नहीं थे। वे चाहते थे कि हिंदी को राजभाषा नहीं बल्कि राष्ट्रभाषा घोषित किया जाए। उन्होंने ऐसे लोगों की आलोचना की जिन्हें लगता था कि हिंदी को उन पर थोपा जा रहा है। धुलेकर ने ऐसे लोगों का मज़ाक उड़ाया जो महात्मा गाँधी का नाम लेकर हिंदी की बजाय हिंदुस्तानी को राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहते हैं :

> महोदय, इस बात पर मेरे से ज़्यादा हर्ष किसी और को नहीं होगा कि हिंदी को देश की राजभाषा घोषित कर दिया गया है...। कुछ लोग कहते हैं कि यह हिंदी को एक रियायत दी गई है। मैं कहता हूँ, "बिलकुल नहीं" यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की परिणति है।

बहुत सारे सदस्यों को धुलेकर के बात करने के अंदाज़ से काफी परेशानी हो रही थी। उनके भाषण के दौरान संविधान सभा के अध्यक्ष ने कई बार उन्हें टोककर कहा कि, "इस तरह बात करके मेरे विचार में आप अपनी बात को आगे नहीं बढ़ा पाएँगे।" लेकिन धुलेकर ने अपने ही अंदाज़ में बात जारी रखी।

5.2 वर्चस्व का भय

धुलेकर के बोलने के बाद मद्रास की सदस्य श्रीमति जी. दुर्गाबाई ने इस चर्चा पर अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहा :

> अध्यक्ष महोदय, अभी हाल तक भारत की राष्ट्रीय भाषा का जो सवाल लगभग सहमति तक पहुँच गया था, अचानक बेहद विवादास्पद मुद्दा बन गया है। चाहे यह सही हुआ हो या गलत, गैर-हिंदी भाषी इलाकों के लोगों को यह अहसास कराया जा रहा है कि यह झगड़ा, या हिंदी भाषी इलाकों का यह रवैया असल में इस राष्ट्र की साझा संस्कृति पर भारत की अन्य शक्तिशाली भाषाओं के स्वाभाविक प्रभाव को रोकने की लड़ाई है।

श्रीमति दुर्गाबाई ने सदन को बताया कि दक्षिण में हिंदी का विरोध बहुत ज़्यादा है : "विरोधियों का यह मानना संभवत: सही है कि हिंदी के लिए हो रहा यह प्रचार प्रांतीय भाषाओं की जड़ें खोदने का प्रयास है...।" इसके बावजूद बहुत सारे अन्य सदस्यों के साथ-साथ उन्होंने भी महात्मा गाँधी के आह्वान का पालन किया और दक्षिण में हिंदी का प्रचार जारी रखा, विरोध का सामना किया, हिंदी के स्कूल खोले और कक्षाएँ चलायीं। "अब इस सबका क्या नतीजा निकलता है?" दुर्गाबाई ने पूछा, "सदी के शुरुआती सालों में हमने जिस उत्साह से हिंदी को अपनाया था, मैं उसके विरुद्ध यह आक्रामकता देखकर सकते में हूँ।" दुर्गाबाई हिंदुस्तानी को जनता की भाषा स्वीकार कर चुकी थीं मगर अब उस भाषा को बदला जा रहा था, उर्दू तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों को उससे निकाला जा रहा था। उनका मानना था कि हिंदुस्तानी के समावेशी और साझा स्वरूप को कमज़ोर करने वाले किसी भी कदम से विभिन्न भाषायी समूहों के बीच बेचैनी और भय पैदा होना निश्चित है।

जैसे-जैसे चर्चा तीखी होती गई बहुत सारे सदस्यों ने परस्पर समायोजन व सम्मान की भावना का आह्वान किया। बम्बई के एक सदस्य श्री शंकरराव देव ने कहा कि कांग्रेसी तथा महात्मा गाँधी का अनुयायी होने के नाते वे हिंदुस्तानी को राष्ट्र की भाषा के रूप में स्वीकार कर चुके हैं, परंतु उन्होंने चेतावनी देते हुए कहा : "अगर आप (हिंदी के लिए) दिल से समर्थन चाहते हैं तो आपको ऐसा कोई

कदम नहीं उठाना चाहिए जिससे मेरे भीतर संदेह पैदा हो और मेरी आंशकाओं को बल मिले।" मद्रास के श्री टी.ए. रामलिंगम चेट्टियार ने इस बात पर ज़ोर दिया कि जो कुछ भी किया जाए, एहतियात के साथ किए जाए। यदि आक्रामक होकर काम किया गया तो हिंदी का कोई भला नहीं हो पाएगा। चाहे लोगों के भय निराधार हों, उनको शांत किया जाना चाहिए वरना "लोगों में गहरी कड़्वाहट रह जाएगी।" उन्होंने कहा, "जब हम साथ रहना चाहते हैं और एक एकीकृत राष्ट्र की स्थापना करना चाहते हैं तो परस्पर समायोजन होना ही चाहिए और लोगों पर चीज़ें थोपने का सवाल नहीं उठना चाहिए...।"

निष्कर्षतः, भारतीय संविधान गहन विवादों और परिचर्चाओं से गुज़रते हुए बना। उसके कई प्रावधान लेन-देन की प्रक्रिया के ज़रिए बनाए गए थे। उन पर सहमति तब बन पाई जब सदस्यों ने दो विरोधी विचारों के बीच की ज़मीन तैयार कर ली।

परंतु संविधान के एक केंद्रीय अभिलक्षण पर काफी हद तक सहमति थी। यह सहमति प्रत्येक वयस्क भारतीय को मताधिकार देने पर थी। इसके पीछे एक ख़ास किस्म का भरोसा था जिसके पूर्वउदाहरण अन्य देश के इतिहास में नहीं थे। दूसरे लोकतंत्रों में पूर्ण वयस्क मताधिकार धीरे-धीरे, कई चरणों से गुज़रते हुए, लोगों को मिला। संयुक्त राज्य अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम जैसे देशों में शुरू-शुरू में मताधिकार केवल संपत्ति रखने वाले पुरुषों को ही दिया गया; फिर पढ़े-लिखे पुरुषों को इस विशेष वर्ग में शामिल किया गया। लंबे व कटु संघर्षों के बाद श्रमिक और किसान वर्ग के पुरुषों को मताधिकार मिल पाया। ऐसा अधिकार पाने के लिए महिलाओं को और भी लंबा संघर्ष करना पड़ा।

हमारे संविधान का दूसरा महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण था धर्मनिरपेक्षता पर बल। संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता के गुण तो नहीं गाए गए थे परंतु संविधान व समाज को चलाने के लिए भारतीय संदर्भों में उसके मुख्य अभिलक्षणों का ज़िक्र आदर्श रूप में किया गया था। ऐसा मूल अधिकारों की शृंखला को रचने के ज़रिए किया गया, विशेषकर 'धार्मिक स्वतंत्रता' (अनुच्छेद 25-28), "सांस्कृतिक व शैक्षिक अधिकार" (अनुच्छेद 29, 30) एवं 'समानता के अधिकार' (अनुच्छेद 14, 16, 17) राज्य ने सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार की गारंटी दी और उन्हें हितैषी संस्थाएँ बनाए रखने का अधिकार भी दिया। राज्य ने अपने आपको विभिन्न धार्मिक समुदायों से दूर रखने की कोशिश की और अपने स्कूलों व कॉलेजों में अनिवार्य धार्मिक शिक्षा पर रोक लगा दी। सरकार ने रोज़गार में धार्मिक भेद-भाव को अवैध ठहराया। लेकिन, दूसरी ओर धार्मिक समुदायों से जुड़े सामाजिक सुधार

कार्यक्रमों के लिए कुछ कानूनी गुंजाइश रखी गई। इसी वजह से अस्पृश्यता पर कानूनी रोक लग पाई और इसी कारण से व्यक्तिगत एवं पारिवारिक कानूनों में परिवर्तन हो पाए। भारतीय राजनीतिक धर्मनिरपेक्षता में राज्य व धर्म के बीच पूर्ण विच्छेद नहीं रहा। हमने दोनों के बीच एक विवेकपूर्ण फासला बनाने की कोशिश की है।

संविधान सभा के विवादों से हमें यह समझ आती है कि संविधान के निर्माण में कैसी-कैसी विरोधी आवाज़ें उठीं और कैसी-कैसी माँगें की गईं। ये चर्चाएँ हमें उन आदर्शों और सिद्धांतों के बारे में बताती हैं जिनका ज़िक्र संविधान के निर्माताओं ने किया, परंतु इन विवादों को समझने में हमें याद रखना चाहिए कि आदर्शों को विशेष संदर्भों के मुताबिक बदला गया। इसके अलावा ऐसा भी हुआ कि सभा के कुछ सदस्यों ने तीन वर्षों में हुई चर्चाओं के साथ-साथ अपने विचार ही बदल डाले। कुछ सदस्यों ने दूसरों के तर्कों के प्रकाश में अपनी समझ बदली और खुले दिलों-दिमाग से काम किया। कुछ अन्य सदस्यों ने आस-पास की घटनाओं को देखते हुए अपने विचार बदल डाले।

चित्र 15.9
संविधान सौंपते हुए बी.आर. अम्बेडकर और राजेंद्र प्रसाद एक-दूसरे को बधाई देते हुए।

काल-रेखा

1945	
26 जुलाई	ब्रिटेन में लेबर पार्टी की सरकार सत्ता में आती है
दिसंबर-जनवरी	भारत में आम चुनाव
1946	
16 मई	कैबिनेट मिशन अपनी संवैधानिक योजना की घोषणा करती है
16 जून	मुस्लिम लीग कैबिनेट मिशन की संवैधानिक योजना पर स्वीकृति देती है
16 जून	कैबिनेट मिशन केंद्र में अंतरिम सरकार के गठन का प्रस्ताव पेश करता है
2 सितंबर	कांग्रेस अंतरिम सरकार का गठन करती है जिसमें नेहरू को उपराष्ट्रपति बनाया जाता है
13 अक्तूबर	मुस्लिम लीग अंतरिम सरकार में शामिल होने का फैसला लेती है
3-6 दिसंबर	ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली कुछ भारतीय नेताओं से मिलते हैं। इन वार्ताओं का कोई नतीजा नहीं निकलता।
9 दिसंबर	संविधान सभा के अधिवेशन शुरू हो जाते हैं
1947	
29 जनवरी	मुस्लिम लीग संविधान सभा को भंग करने की माँग करती है
16 जुलाई	अंतरिम सरकार की आखिरी बैठक
11 अगस्त	जिन्ना को पाकिस्तान की संविधान सभा का अध्यक्ष निर्वाचित किया जाता है
14 अगस्त	पाकिस्तान की स्वतंत्रता : कराची में जश्न
14-15 अगस्त मध्यरात्रि	भारत में स्वतंत्रता का जश्न
1949	
दिसबंर	संविधान पर हस्ताक्षर

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. उद्देश्य प्रस्ताव में किन आदर्शों पर ज़ोर दिया गया था?
2. विभिन्न समूह 'अल्पसंख्यक' शब्द को किस तरह परिभाषित कर रहे थे?
3. प्रांतों के लिए ज़्यादा शक्तियों के पक्ष में क्या तर्क दिए गए?
4. महात्मा गाँधी को ऐसा क्यों लगता था कि हिंदुस्तानी राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)

5. वे कौन सी ऐतिहासिक ताकतें थीं जिन्होंने संविधान का स्वरूप तय किया?
6. दमित समूहों की सुरक्षा के पक्ष में किए गए विभिन्न दावों पर चर्चा कीजिए।
7. संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने उस समय की राजनीतिक परिस्थिति और एक मजबूत केंद्र सरकार की ज़रूरत के बीच क्या संबंध देखा?
8. संविधान सभा ने भाषा के विवाद को हल करने के लिए क्या रास्ता निकाला?

मानचित्र कार्य

9. वर्तमान भारत के राजनीतिक मानचित्र पर यह दिखाइए कि प्रत्येक राज्य में कौन-कौन सी भाषाएँ बोली जाती हैं। इन राज्यों की राजभाषा को चिह्नित कीजिए। इस मानचित्र की तुलना 1950 के दशक के प्रारंभ के मानचित्र से कीजिए। दोनों मानचित्रों में आप क्या अंतर पाते हैं? क्या इन अंतरों से आपको भाषा और राज्यों के आयोजन के संबंधों के बारे में कुछ पता चलता है।

परियोजना कार्य (कोई एक)

10. हाल के वर्षों के किसी एक महत्त्वपूर्ण संवैधानिक परिवर्तन को चुनिए। पता लगाइए कि यह परिवर्तन क्यों हुआ, परिवर्तन के पीछे कौन-कौन से तर्क दिए गए और परिवर्तन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या थी? अगर संभव हो, तो संविधान सभा की चर्चाओं को देखने की कोशिश कीजिए (http://parliamentofindia. nic.in/ls/debaes/debates.htm) । यह पता लगाइए कि मुद्दे पर उस वक्त कैसे चर्चा की गई। अपनी खोज पर संक्षिप्त रिपोर्ट लिखिए।
11. भारतीय संविधान की तुलना संयुक्त राज्य अमेरिका अथवा फ्रांस अथवा दक्षिणी अफ्रीका के संविधान से कीजिए। ऐसा करते हुए निम्नलिखित में से किन्हीं दो विषयों पर गौर कीजिए : धर्मनिरपेक्षता, अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकार और केंद्र एवं राज्यों के बीच संबंध। यह पता लगाइए कि इन संविधानों में अंतर और समानताएँ किस तरह से उनके क्षेत्रों के इतिहासों से जुड़ी हुई हैं।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

ग्रेनविले ऑस्टिन, 1972
दि इंडियन कॉंस्टीट्यूशन : दि कॉर्नरस्टॉन ऑफ ए नेशन
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

राजीव भार्गव
"डेमोक्रेटिक विज़न ऑफ ए न्यू रिपब्लिक", *ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया : सोशल एंड पॉलिटिकल डायनेमिक्स ऑफ डेमोक्रेसी*, एफ. आर. फ्रेंकिल एवं अन्य द्वारा संपादित,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

सुमित सरकार, 1983
"इंडियन डेमोक्रेसी : दि हिस्टॉरिकल इनहेरिटेंस", *दि सक्सेस ऑफ इंडियाज़ डेमोक्रेसी*, संपादक अतुल कोहली, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज

सुमित सरकार, 1983
मॉडर्न इंडिया : 1885-1947
मेकमिलन, नयी दिल्ली

अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
parliamentofindia.nic/ls/debates/debates.htm
(यहाँ आप संविधान सभा की बहसों का डिजिटल संस्करण देख सकते हैं।)

चित्रों के लिए श्रेय

संस्थाओं से

Alkazi Foundation for the Arts, New Delhi (Figs. 11.6; 11.8; 12.12; 12.13)

Collection Jyotindra and Juta Jain, CIVIC Archives, New Delhi (Fig. 13.15)

Photo Division, Government of India, New Delhi (Figs. 14.3; 14.10; 15.3; 15.4; 15.5; 15.6; 15.9)

The Osian's Archive and Library Collection, Mumbai (Figs. 11.9; 11.18; 13.17)

Victoria Memorial Museum and Library, Kolkata (Fig. 10.6, 10.7)

पत्रिकाओं से

Builder (Figs. 12.26)

Punch (Figs. 11.13; 11.14; 11.17)

The Illustrated London News (Figs. 10.1; 10.10; 10.11; 10.12; 10.13; 10.14; 10.16; 10.17; 10.18; 10.19; 11.15; 11.16)

पुस्तकों से

Bayly, C.A., *The Raj: India and the British 1600-1947* (Figs. 10.4; 11.10; 11.11; 12.27)

Dalrymple, William, *The Last Mughal* (Fig. 11.1)

Daniell, Thomas and William, *Views of Calcutta* (Figs. 12.7; 12.8; 12.9; 12.19)

Evenson, Norma, *The Indian Metropolis: A View Toward the West* (Figs. 12.14; 12.16; 12.20; 12.22; 12.23; 12.25; 12.29; 12.30)

Metcalf, T.R., *An Imperial Vision: Indian Architecture and British Raj* (Fig. 12.28)

Publications Division, *Mahatma Gandhi* (many of the Figs. in Ch.14)

Ruhe, Peter, *Gandhi* (Figs. 13.7; 13.11; 13.12)

Singh, Khuswant, *Train to Pakistan* (Figs. 15.1; 15.4; 15.12; 15.13; 15.15)